Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

कालिदास के काव्यों में मदिरा के प्रसङ्ग

डॉ० मृत्युजंय कुमार
प्रखण्ड विकास पदाधिकारी, हिसुआ
नवादा, बिहार (भारत)

सारांश – महाकवि कालिदास ने तत्कालीन युग की समाजिक स्थितियों का सजीव चित्रण किया है। उनके काव्यों में आसव, अरिष्ट, सुरा, मद्य आदि की चर्चा अनेकत्र प्राप्त होती है। वस्तुत: वैदिक वाङ्मय में सोमरस के रहस्य को लोगों ने ठीक से नहीं समझा। उसी प्रकार कालिदास के द्वारा प्रयुक्त तथ्यों को न समझ पाने के कारण लोगों ने इसे मद्यपान का पर्याय मान लिया। यद्यपि तत्कालीन युग में मदिरापान माना जा सकता है किन्तु इसका बहुतायत से प्रयोग होता था अथवा इसे सामाजिक स्वीकृति मिली हुई थी; ऐसा कहना उचित नहीं है। आसव आदि वस्तुत: अनेक प्रकार से बनाए जाते हैं; जिसका प्रकार, निर्माण–विधि, गुण–दोषों की चर्चा आयुर्वेद के ग्रन्थों में किया गया है। कालिदास ने पुष्टिवर्धक पेय के रूप में आसव, अरिष्ट आदि की चर्चा अपने काव्यों में की है।

प्रमुख शब्द – आसव, अरिष्ट, सुरा, मद्य, मदिरा, पुष्प, मधु, पौष्टिक, कालिदास, वर्णव्यवस्था।

कालिदास की रचनाओं में अनेकत्र आसव, अरिष्ट, सुरा, मद्य, मदिरा, पुष्प, मधु आदि की चर्चा उपलब्ध होती है। उन उद्धरणों का संकलन करके कुछ समीक्षकों ने टिप्पणी किया है कि उन दिनों **"सामाजिक स्तर पर सभी वर्गों में स्त्री पुरुष दोनों में सुरापान प्रचलित था। सम्पन्न वर्ग में मद्यों का प्राचुर्य और मद्यपों की भरमार थी।"**[(1)] वस्तुत: यह कथन पूर्वाग्रह से प्रेरित एवं निन्दनीय है। क्योंकि भारतीय परम्परा में इसको कभी भी स्वीकार नहीं किया गया है। हिन्दु धर्म में घोर निजता, मिथ्या आनन्द का भ्रम, मानवीय संवेदनाओं की विस्मृति और अप्राकृतिक कामुकता उत्पन्न करने वाले मदिरापान की अत्यधिक निन्दा की गई है। इस सन्दर्भ में यह सुभाषित पद्य ध्यातव्य है–

एकतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्यं तथैकत:।
एकत: सर्वपापानि मद्यपानं तथैकत:।। [(2)]

सम्पूर्ण वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत तपस्वी और पंक्तिपावन ब्राह्मण भी गिने जाते हैं। उन्हें कैसे मद्यप माना जाए? प्राचीन काल में शुक्राचार्य के शाप–भय और मनु के अनुशासन से वे संयमित जीवन व्यतीत करते थे। सामाजिक रूप से अपने चरित्र के कारण आदर्श की प्रतिमूर्ति माने जाने वाले ब्राह्मण मदिरा को सर्वदा से त्याज्य मानते रहे हैं –

यो ब्राह्मणोऽद्य प्रभृतीह कश्चित्
मोहात् सुरां पास्यति मन्दबुद्धि:
अपेतधर्मा ब्रह्महा चैव स स्या-

दस्मिन् लोके गर्हित: स्यात् परे च। (3)

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत्।

तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वञ्च स गच्छति।। (4)

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में वैदिक ऋषि कण्व अपनी पुत्री शकुन्तला के विवाह हेतु वर की सोमतीर्थ जाते हैं। क्या ऋषि अपनी पुत्री के लिए मद्यप वर खोजने गए थे? क्या सोमतीर्थ में ऋषि ने सोम-पान किया था? यह निरा कल्पना मात्र है। ओषधिराज सोम से निकाला गया अमृत-द्रव कदापि सुरा नहीं हो सकता है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण स्पष्ट रूप से कहते हैं -

त्रैविद्या मां सोमपा: पूतपापा

यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-

मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।। (5)

अर्थात् – तीनों वेदों में विधान किए हुए सकाम कर्मों को करने वाले, सोमरस को पीने वाले, पाप से रहित पुरुष मुझको यज्ञों के द्वारा पूजकर स्वर्ग की प्राप्ति चाहते हैं, वे पुरूष अपने पुण्यों के फलस्वरूप स्वर्गलोक को प्राप्त करके स्वर्ग में दिव्य देवताओं के द्वारा भोगे जाने वाले भोगों को भोगते हैं।

पुष्प का आसव भी सुरा की श्रेणी में नहीं आता है। कुमारसम्भवम् में वर्णन प्राप्त होता है कि गन्धमादन की वनदेवी द्वारा समर्पित कल्पवृक्ष का पुष्पमधु शिव और पार्वती स्वीकार करते हैं। पुष्पासव का सेवन कुमारसम्भवम् महाकाव्य में किन्नरबालाएँ, ऋतुसंहारम् में ग्रीष्म और हेमन्त के रसिक, रघुवंशम् में इन्दुमती तथा अज और मेघदूतम् में यक्ष करते हैं। भारतीय संस्कृति में इसे ब्राह्मणवर्ण के लिए सर्वथा दोषरहित पेय माना जाता था। कालिकापुराण के अनुसार-

नापद्यपि द्विजो मद्यं कदाचिद् विसृजेदपि।

ऋते पुष्पासवादुक्ताद् व्यञ्जनाद् वा विशेषत:।। (6)

नवीन शोधकर्ता इस प्रकार के पुष्पासव पेय का समर्थन करते हैं। डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने माना है कि - **मधु पुष्प का सार तत्त्व होता है। उसमें उन्मादन की अभिव्यञ्जना है - ऐसे उन्मादन की, जिसमें जागरण और स्वप्न एक हो जाते हैं।** (7)

डॉ. रामचन्द्र तिवारी की दृष्टि में **पुष्प का रस आसव (चुआकर प्राप्त मादक पेय) नहीं होता, वह तो मधु (मीठा शहद) होता है। उसमें मादक तत्त्व नहीं होता, अपितु पौष्टिक होता है।** (8)

महाकवि कालिदास के रचनाओं में बारह बार आसव से सुवासित मुख-पवन का आकर्षण अङ्कित किया गया है, यथा-

तासां मुखैरासवगन्धग:-

प्राप्तान्तरा: सान्द्रकुतूहलानाम्

विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षा:

सहस्रपत्राभरणा इवासन्। (9)

उपजाति छन्द में यह पद्य कुमारसम्भव के शिवविवाह और रघुवंश के राजा अज के विवाह प्रसङ्गों में समान रूप से प्रयुक्त है। यह एक सौन्दर्यप्रसाधन की प्रविधि प्रतीत होती है। मुख-सुरभि के लिए किसी द्रव के ओष्ठ-लेप, कपोल के भीतर रखने अथवा कुल्ला करने को सुरापान नहीं निर्धारित किया जा सकता।

प्राचीन भारत में ब्राह्मण वर्ण के अतिरिक्त अन्य जाति के लोग और सेवक लोग कभी कभी मद्यपान करते थे। महर्षि याज्ञवल्क्य ने उन्हें इसकी अनुमति प्रदान की है–

कामादपि हि राजन्यो वैश्यो वापि कथञ्चन।

मद्यमेव सुरां पीत्वा न दोषं प्रतिपद्यते।। (10)

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य में सभी वर्णों का चित्रण प्राप्त होता है। अत: महाकवि ने आलोचना के स्वर में ऐसे कामी, यक्ष, किन्नर, योद्धा और सिपाहियों के व्यसनों का वर्णन किया है। ऋतुसंहार में शरद् को छोड़कर शेष ऋतुओं में मधु–सन्दर्भ आते हैं। उनमें मुख का सुगन्धीकरण तथा उत्कृष्ट मद्यसेवन कामियों का स्वभाव निरूपित किया गया है। उदाहरणस्वरूप कालिदास के काव्यों में प्राप्त इन तथ्यों का विश्लेषण किया जा सकता है–

-प्रियामुखोच्छ्वासविकम्पितं मधु...

-शुचौ निशीथेऽनुभवन्ति कामिन:।

-वदनै: ससीधुभि: स्त्रियो रतिं संजनयन्ति कामिनाम्।

-पुष्पासवामोदसुगन्धिवक्त्रो.

-शेते जन: कामशरानुविद्ध:।

-सुरासवामोदितवक्त्रपङ्कजा:

-विशन्ति शय्यागृहमुत्सुका: स्त्रिय:।

-कामिनो जना: पिबन्ति मद्यं मदनीयमुत्तमम्।

-मदिरालसेषु गण्डेषु पाण्डु:

-स्त्रीणामनङ्गो बहुधा स्थितोऽद्य। (11)

तत्कालीन समाज में उत्तम–कोटि के श्रोत्रिय ब्राह्मण अथवा निष्ठावान् क्षत्रिय तथा पतिव्रता स्त्रियों द्वारा मदिरा का स्पर्श नहीं किया जाता था। स्त्रियों में केवल प्रमदा, खण्डिता, यवनी और दैत्य सुन्दरियाँ ही इसका व्यवहार करती थीं। पात्रों के कथोपकथन में प्रयुक्त दो लोकोक्तियों पर इसी परिप्रेक्ष्य में विचार आवश्यक है। मालविकाग्निमित्र में मालविका के प्रति नवीन अनुराग से विह्वल राजा को लक्ष्य करके विदूषक कहता है–

वअस्स! इअं क्खु सीहुपाणुव्वेजिदस्स मच्छण्डिआ उवणदा' (12)

(मित्र! यह तो गुड़ के मद्य से ऊबे हुए को रवेदार चीनी की शराब मिल गई है।)

इस प्रभावपूर्ण लोकोक्ति से रूप और आस्वाद की अधिकता की सूचना प्राप्त होती है। राजा के लिए पान एवं भोजन तथा अपने लिए लड्डू चाहने वाले गौतम की उक्ति से और क्या अनुमान लगाया जा सकता है।

दूसरी लोकोक्ति से उन दिनों की वास्तविक स्थिति प्रकट होती है। एक बार मदिरा सेवन कर उन्माद में आई रानी इरावती अपनी चेटी निपुणिका से पूछती है–

सुणामि बहुसो मदो किल इथिआजणस्स विसेसमण्डणं त्ति। अवि सच्चो एसो लोअवाओ?

(प्राय: सुनती हूँ कि नशे से नारियाँ निखर उठती हैं। क्या यह सच्ची कहावत है?)।

निपुणिका सीधे शब्दों में उत्तर देती है–

पढमं लोअवाओ एव्व, अज्ज उण सच्चो संवुत्तो। (13)

(पहले तो कहावत थी, आज सच्ची हो गई)।

उपरोक्त कथनों से सुनिश्चित होता है कि सुसम्पन्न-वर्ग की महिलायें प्राय: मद्यपान नहीं करती थीं। उनके संबन्ध में झूठी कहावतें प्रचलित थीं। कवि-चक्रवर्ती कालिदास तो पुरुषों के मद्यपान का भी विरोध करते हैं। शाकुन्तल के दुर्वासा-शाप में प्रमत्त व्यक्ति घोर शाप से ग्रस्त जैसा निरूपित किया गया है-

स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्

कथां प्रमत्त: प्रथमं कृतामिव। (14)

उसी नाटक में दुर्वासा के शाप के कारण परित्यक्ता शकुन्तला का अभिज्ञान कराने वाली अंगूठी को उलाहना देते हुए दुष्यन्त के प्रति विदूषक माधव्य कहता है-

गहीदो गेण पंथा उम्मत्तआणं। (15)

(इसने तो उन्मत्तों का रास्ता पकड़ लिया)।

इस भाँति प्राचीन भारत के स्वर्णिम युग में 'सुरापान करने वालों का प्राचुर्य था' इस प्रकार का आक्षेप वितण्डा मात्र है। अपितु इन ग्रन्थों के अवलोकन एवं शोध से ज्ञात होता है कि उस युग में मद्यपान शास्त्रानुसार अमर्यादित और त्याज्य माना जाता था। अपवाद रूप में कुछ प्रसंग आसव के मिलते भी हैं तो वह पुष्पासव था जो पुष्टिवर्धक एवं रोगनाशक होने के कारण ग्राह्य था। सोमरस अमृततुल्य एक पवित्र पेय पदार्थ था। सोमरस अथवा पुष्पासव से आधुनिक युग के शराब अथवा दारु का अर्थ निकालने भाड़ी भूल होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कालिदास का भारत। भाग 2 पृ0 59-60 भगवत शरण उपाध्याय। सन्दर्भ हेतु द्रष्टव्य संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास पृ0 60-61 डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी।
2. सुभाषितरत्नभाण्डागारम् पृ0 100।
3. महाभारत 1.76.61
4. मनुस्मृति 11.98
5. श्रीमद्भगवद्गीता 9.20
6. कालिकापुराण - 66
7. कालिदास की माधुर्य दृष्टि- पृ॰ 18 कालिदास II, 1986 उज्जैन।
8. कालिदास की तिथि संशुद्धि - पृ॰ 304, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली 89।
9. कुमारसम्भवम् - 7.62 तथा रघुवंशम् 7.11
10. शब्दकल्पद्रुम - पृ॰ 592
11. ऋतुसंहारम् - 1.3; 2.18; 4.11; 5.5,10। 6.10
12. मालविकाग्निमित्रम् - 3.5.4
13. मालविकाग्निमित्रम् - 3.5.4.6
14. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 4.1
15. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 6.12.7-8